International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

'इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविता: संवेदना के नए आयाम

डॉ.संध्या दुबे

एसोसिएट डीन डॉ सी वी रमन विश्वविद्यालय खंडवा

हिंदी साहित्य में आधुनिक संवेदना का सूत्रपात वैसे तो भारतेंदु युग से माना जाता है लेकिन तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ इसके स्वरूप में काफी बदलाव आया। आधुनिक चिंतन में मनुष्य सारे मूल्यों का स्रोत और उसका उपादन बना और वह स्वयं ही उनके विघटन का कारण था । संचार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष माध्यमों के प्रचार-प्रसार के कारण मानवीय संवेदनशीलता पर दबाब बढ़ा है जिसके कारण अनुभूति का क्षरण हो रहा है। आज मनुष्य ही मनुष्य के लिए सबसे बड़ा खतरा बन गया है। एक समय कविता को जीवन की अत्यंत मानवीय सृष्टि मानते हुए मुक्तिबोध ने एक विशिष्ट कथन प्रणाली का विकास किया था। जीवन और कविता का अत्यंत विशुद्ध और विस्तृत खुलासा उन्होंने अपनी 'चकमक की चिनगारियां' शीर्षक कविता में किया।

कि मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में / सभी प्रश्नोत्तरी की तुंग प्रतिमाएं
गिरा कर तोड़ देता हूँ हथौड़े से / कि वे सब प्रश्न कृत्रिम और
उत्तर और भी छलमय / समस्या एक-
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में / सभी मानव
सुखी, सुन्दर व शोषण मुक्त / कब होंगे?

मुक्तिबोध ने हिंदी कविता को संवेदना की नई भावभूमि से जोड़ा। दरअसल इसकी शुरुआत निराला के साहित्य से ही हो चुकी थी| प्रगतिवाद प्रयोगवाद और नई कविता के दौर की संवेदनाएं आपस में इतनी घुल-मिल गई है कि इनके बीच विभाजक रेखा खींचना थोड़ा मुश्किल है। सन् 60 के बाद की समकालीन कविता अपने समय की केन्द्रीय धड़कन से तो जुड़ी लेकिन विविध काव्यान्दोलनों की भरमार के कारण उसका कोई ठोस स्वरूप निश्चित नहीं हो सका। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक जिन कवियों ने संवेदना के नए-नए धरातल को स्पर्श किया उनमें नागार्जुन, भूमिल, रघुवीर सहाय शमशेर बहादुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, दुष्यन्त, केदारनाथ सिंह, चंद्रकांत देवताले आदि कवियों का विशिष्ट स्थान है। हिंदी कविता की दुनिया में 1980 के आसपास का समय इतना अराजक नहीं था। यह कविता के लिए अपनी

जड़ों तक लौटने का समय था। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल आदि जैसे पुरानी पीढ़ी के साथ नई पीढ़ी के अधिकांश कवि एक साथ कवि कर्म में संलग्न थे। इस दौर में मां, पत्नी, पुत्री, पिता, पेड़, चिड़ियां, कोट, जूता एवं अन्य आसपास की वस्तुओं समसामयिक संदर्भों, विषयों, स्थलों आदि पर कविताएं लिखी गई। इन वस्तुओं और संबंधों को समय और समाज के संदर्भ में नई संवेदनाओं से जोड़ा गया। नागार्जुन ने 'नेवला', 'कटहल, 'सुअर' जैसे विषयों पर कविताएं लिखीं तो त्रिलोचन ने 'नगईमहरा' कविता लिखकर अपने जनपद के लोकजीवन और संस्कृति को अभिव्यक्ति प्रदान की। इसी क्रम में केदार नाथ सिंह ने अपनी कविताओं के माध्यम से लोकजीवन की संस्कृति को नई अर्थछवियाँ दी। रघुवीर सहाय सक्सेना, धूमिल, दुष्यंत आदि जैसे कवियों ने राजनीति, सत्ताव्यवस्था की नीतियों को अपने काव्य का विषय बनाया। अशोक वाजपेयी, उदय प्रकाश, देवताले, विनोद कुमार शुक्ल, अरुण कमल, लीलाधर जगूड़ी, मंगलेश डबराल आदि कवियों ने हिंदी कविता को नया संसार दिया। अशोक वाजपेयी की कुम्हार, लुहार, बढ़ई, कुंजड़े, कबाड़ी आदि विषयों पर लिखि कविताएं हिन्दी कविता की संवेदना को एक नई जमीन दीं।

21वीं में सूचना की, मीडिया, आतंकवाद, धर्म, अर्थ और बल पर केन्द्रित राजनीति, पूँजी, बाजारवाद, भूमंडलीकरण आदि के प्रभावों में काफी इजाफा हुआ। इसके परिणाम स्वरूप भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। मुक्त बाजार की आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के कारण सर्वग्रासी मूल्यहीनता अधिक विकराल हुई। समता, समानता और न्याय के सवाल वहीं खड़े हैं। इसके कारण हमारी संवेदना की साझी विरासत को लगा है। समाजिक जीवन में से संवेदना कुछ बची-खुची है लेकिन इसकी छोटी इकाई परिवार में अंतिम साँसें गिन रही हैं।

समाज में पूंजी के वर्चस्व के कारण दिन-प्रतिदिन संवेदना आहत हो रही है। गुलाम वंश की मौत आज मनुष्य बिक रहा है। मुक्तिबोध ने पहले ही कहा था 'कविता में कहने की आदतें नहीं पर कह दूं / वर्तमान समाज चल नहीं सकता / पूंजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता।' कविता के भविष्य को लेकर विशेष चिंता पूंजावीद के आगमन के साथ शुरू हुई। जिस समाज में अच्छे भाव-विचार के लिए जगह नहीं है, इसका मतलब है कि वह समाज पूँजी का गुलाम है। कविता स्वभावतः सरल एवं सादगीपूर्ण प्राकृतिक जीवन में बसती है। कविता के विमलता की बात तुलसी ने भी की है। पूंजी, मीडिया एवं तकनीकी उपकरणों के मायाजाल के कारण राजनीति, संस्कृति एवं समाज का चेहरा बिगड़ रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने कला और को बाजार की वस्तु बना दिया है। कलाओं का अवमूल्यन हो रहा है। डॉ० राममनोहर लोहिया ने लिखा है- "पूजीवादी विकास का सिद्धान्त इस सत्य में निहित है कि 'श्रम अन्य स्तुओं की भाँति एक वस्तु है। पूजीपति श्रम को इसलिए खरीदते हैं कि उसकी सहायता से बिक्री के लिए अन्य वस्तुओं का उत्पादन कर सकें।" ('उत्तर प्रदेश' अक्टूबर-03, पृ० 5)

21वीं सदी में सामाजिक मनोभाव में काफी बदलाव आया है। यह बदलाव मनुष्य की बाहरी दुनिया के साथ-साथ उसकी आन्तरिक दुनिया से भी संबंधित है। बाहर-भीतर के इस तीव्र बदलाव में कुछ मान्यताएं टूट रही हैं तो कुछ छूट रही हैं और कुछ नई मान्यताएं आकार ग्रहण कर रही | बदलाव की इस प्रक्रिया में समाज में नई-नई चुनौतियाँ खड़ी हो रही हैं जो कि साहित्य की श्री चुनौतियाँ बन रही हैं। यही कारण है कि हिंदी कविता संवेदना के नए-नए आयामों से सहाय सक्सेना रही है। अरुण कमल लिखते हैं-

इस तेज बहुत तेज चलती पृथ्वी के अन्धड़ में,
जैसे मैं बहुत सारी आवाज नहीं सुन रहा हूं
वैसे ही तो होंगे वे लोग भी जो सुन नहीं पाते
गोली चलने की आवाज ताबड़-तोड़
और पूंछते हैं कहां है पृथ्वी पर चीख (नए इलाके में)

सामाजिक जीवन के यथार्थ की विविधता व्यापकता और संश्लिष्टता को पकड़ना सचमुच रूप से आज टेढ़ी खीर है। पहले व्यक्ति एवं समाज मन की परख आसानी से हो जाती थी लेकिन आज वह मुश्किल है। अब हर तरफ गति है, हर तरफ सक्रियता है। राजनीति ने जैसे सबको सोते से जगा दिया है। विजय कुमार का कहना है- "आधुनिक समाज में सत्ता की ताकत ने बर्बरता की जो अलग-अलग शक्लें अख्तियार की हैं और अत्याचार का जैसा संस्थानीकरण हुआ है। उसके चलते सामान्य मनुष्य की कोई आवाज यदि बची है और हमारा कवि यदि आवाज सुनता है और उसे अपनी कविता में आकार देना चाहता है तो कहना न होगा कि कवि की इस तरह की आकांक्षा में आज एक बुनियादी अपर्याप्तता का बोध भी जुड़ा हुआ है।" (आ०लो० जन- मार्च 03, पृष्ठ-26)

दरअसल इस समय हम एक बड़े सांस्कृतिक संकट का सामना कर रहे हैं। एक ओर मुक्त बाजार, उपभोक्तावाद, विज्ञापन, उपग्रह संचार माध्यम और वैश्विक अर्थव्यवस्था का जगमग संसार मनुष्य को लुभा रहा है वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और पासीवाद पोषक शक्तियाँ हमारे समाज को संकीर्णता और धार्मिक कट्टरता के गर्त में धकेलती जा रही हैं। एक प्रकार से समाज और राजनीति में 'क्रूरता और छल-कपट' की संस्कृति पनप रही है।

कवि कुमार अम्बुज की 'क्रूरता' शीर्षक कविता का याद हो जाना स्वाभाविक है-

तब आएगी क्रूरता
फिर घटित होगी धर्मग्रन्थों की व्याख्या में
फिर इतिहास में और भविष्यवाणियों में
फिर वह जनता का आदर्श हो जाएगी

वह संस्कृति की तरह आएगी उसका कोई विरोधी न होगा।
कोशिश सिर्फ यह होगी किस तरह वह अधिक सभ्य
और अधिक ऐतिहासिक हो,
यही ज्यादा संभव है कि वह आए
और लंबे समय तक हमें पता ही न चले उसका आना। (आ0लो0 02-अप्रैल-जून)

वस्तुतः इस क्रूरता भरे माहौल में भी हमारी साझा संस्कृति अपनी पहचान बनाए हुए है। इस परिप्रेक्ष्य में कुँवरनारायण के नए संग्रह 'इन दिनों' की कविताएं गवाह हैं जो कि हमारे समाज की साझे सांस्कृतिक मूल्यों की वकालत करती है और एक नई संवेदना को जन्म देती हैं।' एक अजीब सी मुश्किल कविता की कुछ पंक्तियाँ साम्प्रदायिकता क्रूरता और मनुष्य के प्रति घर्णा से भर रही, इन दिनों की भाषा के विरुद्ध बुनावट और शिल्प के स्तर पर नए भावबोध की संवेदना को जन्म देती हैं।

एक अजीब सी मुश्किल में हूं इन दिनों / मेरी भरपूर नफरत कर सकने की ताकत;
दिनो दिन क्षीण पड़ती जा रही है / अंग्रेजों से नफरत करना चाहता,
जिन्होंने दो सदी हम पर राज किया तो शेक्सपीयर आड़े आ जाते.
जिनके मुझ पर न जाने कितने अहसान हैं,
मुसलमानों से नफरत करने चलता / तो सामने गालिब आकर खड़े हो जाते,
अब आप ही बताइए किसी की कुछ चलती है। उनके सामने ?

वस्तुतः आज अहिंसा, करुणा, दया, धैर्य, सहिष्णुता, परोपकार, उदारता आदि मानवीय मूल्यों के स्थान पर हिंसा, निष्ठुरता, आक्रामकता, लूट-खसोट, झूठ-फरेब आदि जैसे अमानवीय मूल्यों की वृद्धि हो रही है। वर्तमान सदी में मनुष्य भय और अविश्वास के माहौल में सांस ले रहा है। इस दौर के युवा कवि एकान्त श्रीवास्तव अपनी 'समुद्र पीछे खिसक रहा है' और 'डर' कविता में लिखते हैं-

जैसे दिनों-दिन कम होता जाता है । पूर्णिमा के बाद चांद
कम होती जा रही है उम्मीदें / आदमी पर आदमी का भरोसा
कम होता जा रहा है...../
मृत्यु से प्रायः सब डरते हैं / मगर यहाँ तो जीने की दहशत है,
कदम-कदम पर.....। (आ०लो० जुला सित० 2000, पृष्ठ-90)

इक्कीसवीं सदी की कविता रोजमर्रा के जीवन एवं चिंतन की संवेदनाओं से जुड़ीं। वस्तुतः की शुरुआत बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के पुरानी एवं नई पीढ़ी के कवियों द्वारा हो चुकी थी। 20 लो० के जुला0 सित0-01 में हरीशचन्द्र पांडे की 'कुतरे गए फल', 'ले देकर एक', चाई गई जमीन', 'इधर मैंने उठाई है', 'खिलौने', 'कांटा निकालना', 'बचा लो इसे', 'जंगल में रास्ता', 'कर्ज', 'सपना' और 'सुअर का बच्चा' आदि

कविताएं उनके रोज के जीवन के अनुभव हे टकराती हुई कविताएं हैं जो कि नई-नई संवेदनाओं से भरपूर हैं। अगले अंक में "किस तरह आउं कि मेरे पैर दुखते हैं वली/खून के छीटे नमक है और बासी भात है/मैं कहूँ किससे कहूं कि क्या यही गुजरात है/साधु से ही पूछते हो क्या तुम्हारी जात है-कविता की पंक्तियाँ देवीप्रसाद मित्र की 'जो पीछे नीर नैना का शीर्षक कविता से ली गई है। प्रस्तुत कविता गुजरात में हुए दंगे पर केन्द्रित है।

युवा कवि निलय उपाध्याय की 'गमछा, 'मुझे पछाड़ दिया', 'आवाज', 'बस में....', 'पचीता', 'विजय रथ', 'उनकी रोशनी में', 'दांत' आदि कविताएं 'कवि के निजी अनुभवों और समसामयिक संदर्भों के विविध संवेदनाओं से जुड़ी. • कविता आम आदमी की आर्थिक मजबूरी और लाचारी की मार्मिक संवेदना को व्यक्त करती है-

घाव की तरह टीसते हैं।
और भोजन देख बिलख पड़ते हैं मसूढ़े
जीभ उन्हें सहलाती है, दिलाती है यकीन
हम भी जल्दी ही लगवा लेंगे भैया
एक बेटी बची है अभी
उसे ब्याहने के बाद। (आ0लो0 02, अंक नौ)

उदय प्रकाश की 'टेलीफोन' कविता एक साथ समय, सूचना तकनीकी, एवं बाजारवाद के प्रभाव को परिणाम स्वरूप उपजी कई नई संवेदनाओं को जन्म देती हैं।

तकनीकी ने छीना चरखा
काल ने छीना मां
सभ्यता ने ले गई रस्सी, थाली और धोती
नींद के लिए बाकी था कल तक किसी कोने में एक अंधेरा
उठा ले गया बाजार
थोड़ी-सी थी जो इज्जत ले गई गरीबी (आ० लो० जन-मार्च, 02 पृष्ठ-63)

इन दिनों हिंदी कविता में जहाँ हिंसा, बाजार और उपभोक्तावाद के आतंक को प्रबलता से दर्ज किया गया है, वही साम्प्रदायिकता और घृणा के कुरूप चेहरे को भी बेनकाब करने की कोशिश मिलती है। समकालीन कवि सतही यथार्थवादी और प्रचारात्मक कविता की रुग्ण परंपरा से मुक्त है। इसमें विचार कौर संवेदना को खास महत्त्व दिया गया है। इन दिनों हिंदी के अधिकांश कवि मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से आ रहे हैं। वे परिवर्तित समाज की संवेदनाओं से प हैं। परिवर्तन का असर मध्यवर्गीय जीवन पर कुछ अधिक पड़ता है

क्योंकि वह अतृप्त वासनाओं और कुण्ठाओं का शिकार होता है। समाज में संवेदना के नए आयामों की धड़कन को इस वर्ग के द्वारा अच्छी तरह से जाना जा सकता है।

सन् 2000-01 में प्रकाशित 'अतिरिक्त नहीं (विनोद कुमार शुक्ल), 'वर्षा में भीगकर' (इब्बार रब्बी), 'एवजी में शब्द' (विनोद कुमार श्रीवास्तव), 'नीम रोशनी में' (मदन कश्यप), 'कटौती' (निलय उपाध्याय), 'हम जो नदियों का संगम' (बोधिसत्व), 'इस तरह मैं (पवन करण), 'मिट्टी से कहूँ धन्यवाद (एकांत श्रीवास्तव), 'मिट्टी का फल' (प्रेमरंजन अनिमेष), 'कागज के प्रदेश में' (संजय कुंदन), 'काल और अवधि के दरम्यान' (विष्णु खरे), 'सराय में कुछ दिन' (नरेन्द्र जैन), 'लिख सकूं तो' (नईम), 'सुन्दर चीजें शहर के बाहर हैं' (अरविंद चतुर्वेदी), 'पुरखों की परक्षी में धूप' (अशोक वाजपेयी), 'उजाड़ में संग्रहालय' (चन्द्रकांत देवताले), 'मेरा उजाड़ पड़ोस' (दिनेश जुगरान) आदि काव्य संग्रहों की कविताओं के माध्यण से हिंदी कविता की नई-नई संवेदनाओं की परख की जा सकती है।

उक्त काव्य-संग्रहों के अंतिम दो संग्रहों में 'उजाड़' शब्द का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः यह देवताले और जुगरान की संवेदना का नया धरातल है क्योंकि न तो संग्रहालय उजाड़ में रह सकता है और न उजाड़ पड़ोस के साथ 'हम जो नदियों का संगम' (बोधिसत्व), 'इस तरह मैं' (पवन करण), 'मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद' (एकांत श्रीवास्तव), 'मिट्टी का फल (प्रेमरंजन अनिमेष), 'कागज के प्रदेश में' (संजय कुंदन), 'काल और अवधि के दरम्यान' (विष्णु खरे), 'सराय में कुछ दिन' (नरेन्द्र जैन), 'लिख सकूं तो' (नईम), 'सुन्दर चीजें शहरके बाहर हैं' (अरविंद चतुर्वेदी), 'पुरखों की परक्षी में धूप' (अशोक वाजपेयी), 'उजाड़ में संग्रहालय(चन्द्रकांत देवताले), 'मेरा उजाड़ पड़ोस' (दिनेश जुगरान) आदि काव्य संग्रहों की कविताओं के से हिंदी कविता की नई-नई संवेदनाओं की परख की जा सकती है।

उक्त काव्य-संग्रहों के अंतिम दो संग्रहों में 'उजाड़' शब्द का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः माध्यम देवताले और जुगरान की संवेदना का नया घरातल है क्योंकि न तो संग्रहालय उजाड़ में रह है और न उजाड़ पड़ोस के साथ।

आजादी के इतने वर्षों के बाद भी कहीं-कहीं देश की हालत उजाड़ जैसी ही है। स्वतंत्रता-दिवस के अवसर पर देशवासियों को दी जाने वाली लुभावनी योजनाओं से दुःखी होकर देव ताले लिखते हैं-

कल सुबह स्वतंत्रता दिवस का झंडा फहराने के बाद
जो कुछ भी कहा जाएगा।
उसे बर्दाश्त करने की ताकत मिले सबको मैं शायद कुछ ऐसा ही बुदबुदा रहा हूँ।

आज सूचना तकनीकी, बाजारवाद, भूमंडलीकरण और आतंकवाद के दौर में मानवीय संवेदनाओं पर कई-कई अजनबी संस्कृतियों का हमला है। पास-पड़ोस और गली-मुहल्लों की चहल-पहल समाप्त हो गई है।

रिश्तेदारों-मित्रों का मिलना-जुलना लगभग समाप्त हो चुका है। जिन्दगी की आपाधापी, पूंजी संग्रह, निजी सुखोपभोग आदि के कारण खून के रिश्तों में भी दरार पड़ गई है। एक-दूसरे के सुख-दुःख की चिन्ताएं समाप्त हो रही हैं। मनुष्य पशु की भाँति संवेदन विहीन जीवन जी रहा है। इधर कुमार अम्बुज के तीन संग्रहों-किवाड़' (1992), 'क्रूरता' (98). 'अनंतिम' (98), के बाद चौथा संग्रह 'अतिक्रमण' (02) वीरेन हंमवाल के महत्त्वपूर्ण संग्रह 'दुष्चक्र में स्रष्टा' के साथ छपकर आया है। अम्बुज की 'अतिक्रमण' शीर्षक कविता वर्तमान परिदृश्य का बड़ा बेवाक चिरण करती है।

अतिक्रमण के समाज में जीवित रहने के लिए
सबसे पहले दूसरे की हिस्से की जगह चाहिए
फिर दूसरे के हिस्से की स्वतंत्रता
अनंत है अतिक्रमण के विचार की परिधि
इसलिए फिर दूसरे के हिस्से का जीवन भी चाहिए
वासनाएं नए क्षेत्रों में करती हैं घुसपैठ
सिद्धान्त और सुभाषित बदलने लगते हैं हथियारों में (कविता का उत्तर जीवन, पृष्ठ 103)

हिंदी कविता के समकालीन परिदृश्य में अनामिका, गगन मिल, तेजी ग्रोवर, कात्यायनी, निर्मला गर्ग, नीलेश रघुवंशी आदि की कविताएं नारी जीवन की विविध नई संवेदनाओं से जुड़ी है। अनामिका के 'अनुष्टुप' संग्रह की पहली कविता 'ईश्वर' को अन्त में कविता रूपक "बहिनाबाई' इक्कीसवीं सदी से मिलाकर पढ़ें तो यह ईश्वर से एक नया सामना है-

जब उसने पहले-पहल मुझे छुआ
दरक गई घटनाओं की छाती।
हूक की तरह उठी पछिया
और मुझे सहेज कर समेटा उसने
जैसे आंधी में
कपड़े अंकवार लिए जाते हैं अलगनी से खीचकर

गगन मिल की कविताओं ने आधुनिक हिंदी कविता को नया तेवर दिया। 'एक दिन लौटेगी लड़की' (89) 'अंधेरे में बुद्ध' (98) 'यह आकांक्षा समय नहीं (98) से लेकर चौथे काव्य-संग्रह 'थपक-थपक दिल थपक-थपक' का केन्द्रीय सरोकार मानवीय स्थिति का दुःख रहा है।

सांस में दुखड़ा दुखड़े में आग / धौंकनी ये हरदम भभक भमक
न वो अपना न वो किसी का / बैर निभाया उसने सोच-समझ

युवा कवयित्री नीलेश रघुवंशी का दूसरा काव्य-संग्रह 'पानी का स्वाद' नारी जीवन के निजी अंतरंग प्रसंगों को व्यक्त करता है। इसके काव्यानुभवों में एक देशी चमक है। स्नेहमयी चौधरी, कीर्ति चौधरी, प्रेमलता वर्मा, तेजी गोवर, क्षमा कौल, सविता सिंह, अनीता वर्मा, मधु शर्मा आदि कवयित्रियां भी नारी एवं समाज जीवन की विविध नई संवेदनाओं को छूती हुई कविताएं लिख रही हैं।

इधर की कविता में लोक-जीवन की घुसपैठ कुछ अधिक हुई है। लगता है कि इसके मूल में बाज़ारवाद के कारण गायब होता हुआ हमारा मौलिक सांस्कृतिक जीवन है। वस्तुतः बाजार हमारे घरों में रोज दस्तक दे रहा है और हम उसमें जीने के लिए मजबूर हैं। आज का कवि समझ रहा है उपभोक्तावाद की आंच से लोक संस्कृति को पुनः कायम करके ही बचा जा सकता है।

पुरानी पीढ़ी के कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह आदि जैसे कवियों ने इसकी शुरुआत पहले कर दी थी। इक्कीसवीं सदी के कई युवा कवियों का ध्यान लोक जीवन की संस्कृति की ओर गया है जिनमें देवताले, अरुण कमल, एकान्त श्रीवास्तव, कुमार अम्बुज, मदन कश्यप, निलय उपाध्याय, बोधिसत्व, प्रेमरंजन अनिमेष आदि प्रमुख हैं।

नी जुड़ी रूपक ३

उपाध्याय लिखते हैं-

हाई साल की बच्ची / तितली के पीछे भागती फूल तक पहुँच जाती है, तेज धूप में पंख पसार लेते हैं मेघ / किसी खपरैल छप्पर पर बारिश का सरगम या गाय के थनों में ठुमककर जब मुंह मारता है बछड़ा / मनबोध बाबू (आ०लो० जन-मार्च (11, पृष्ठ-94)

इक्कीसवीं सदी के इन पांच वर्षों में हिंदी कविता बीसवीं सदी के अंतिम दशक एवं आज की नई संवेदनाओं के साथ निरंतर बदलाव की प्रक्रिया से गुजर रही है। राजनीति, बाजार, मीडिया, सूचना, तकनीकी, भूमंडलीकरण आदि के प्रभाव के कारण हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन वर्षों में नहीं अपितु महीनों में हो रहे हैं। दरअसल इस गतिशीलता को स्थूल रूप से नहीं आंका जा सकता क्योंकि आज व्यक्ति एवं समाज मन को आसानी से नहीं जांचा जा सकता। फिर भी नए कवि सक्रिय होकर अपनी भूमिका का सफल निर्वाह कर रहे हैं। हिंदी कविता के अत्यधिक गद्यात्मक रूप से उसकी पठनीयता में कमी आयी है। हिंदी कविता को अपनी जड़ तक पहुँचने तथा नई संवेदनाओं को पकड़ने के लिए उसका पठनीय होना भी जरूरी है। वस्तुतः कविता आम जीवन से कट रही है। यह एक विचारणीय मुद्दा है।